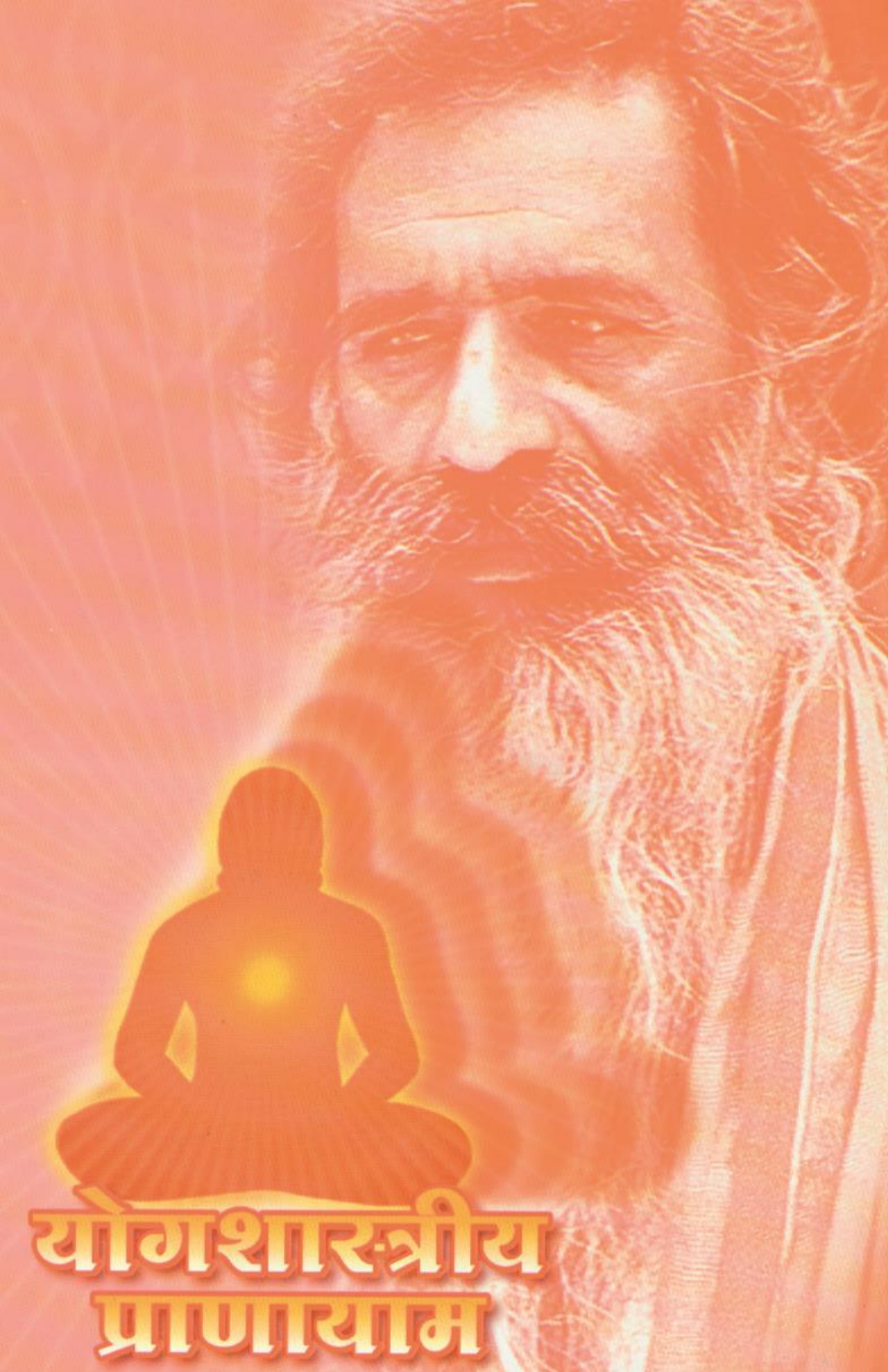

योगशास्त्रीय प्राणायाम

॥ ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ॥

योगशास्त्रीय प्राणायाम ?

लेखक :

परमपूज्य श्रीपरमहंसजी महाराज का कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी

श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़

ग्राम-पत्रालय– शक्तेषगढ़, जिला– मीरजापुर

उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया (चित्रकूट)

के परम पावन चरणों में सादर समर्पित

अन्तःप्रेरणा

अनुरोध

आदिकाल से आपका धर्मशास्त्र गीता है जिसका भाष्य आश्रम से प्रकाशित '**यथार्थ गीता**' है। गीता की इस व्याख्या में न तर्क है, न आज तक किसी ने तर्क किया है। नास्तिक बनकर भी ढूँढ़ना चाहें तब भी इस टीका में धर्म-सम्बन्धी कोई प्रश्न अनुत्तरित नहीं पायेंगे। इस '**यथार्थ गीता**' की तीन-चार आवृत्ति कर लें, धर्म-सम्बन्धी सभी भ्रम निर्मूल हो जायेंगे। इस संसार में मानवमात्र के लिए कल्याण का साधन एकमात्र सन्त की वाणी है, अस्तु अनुशीलन करें– '**यथार्थ गीता**'।

सविनय,

प्रकाशक

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

।। ॐ ।।

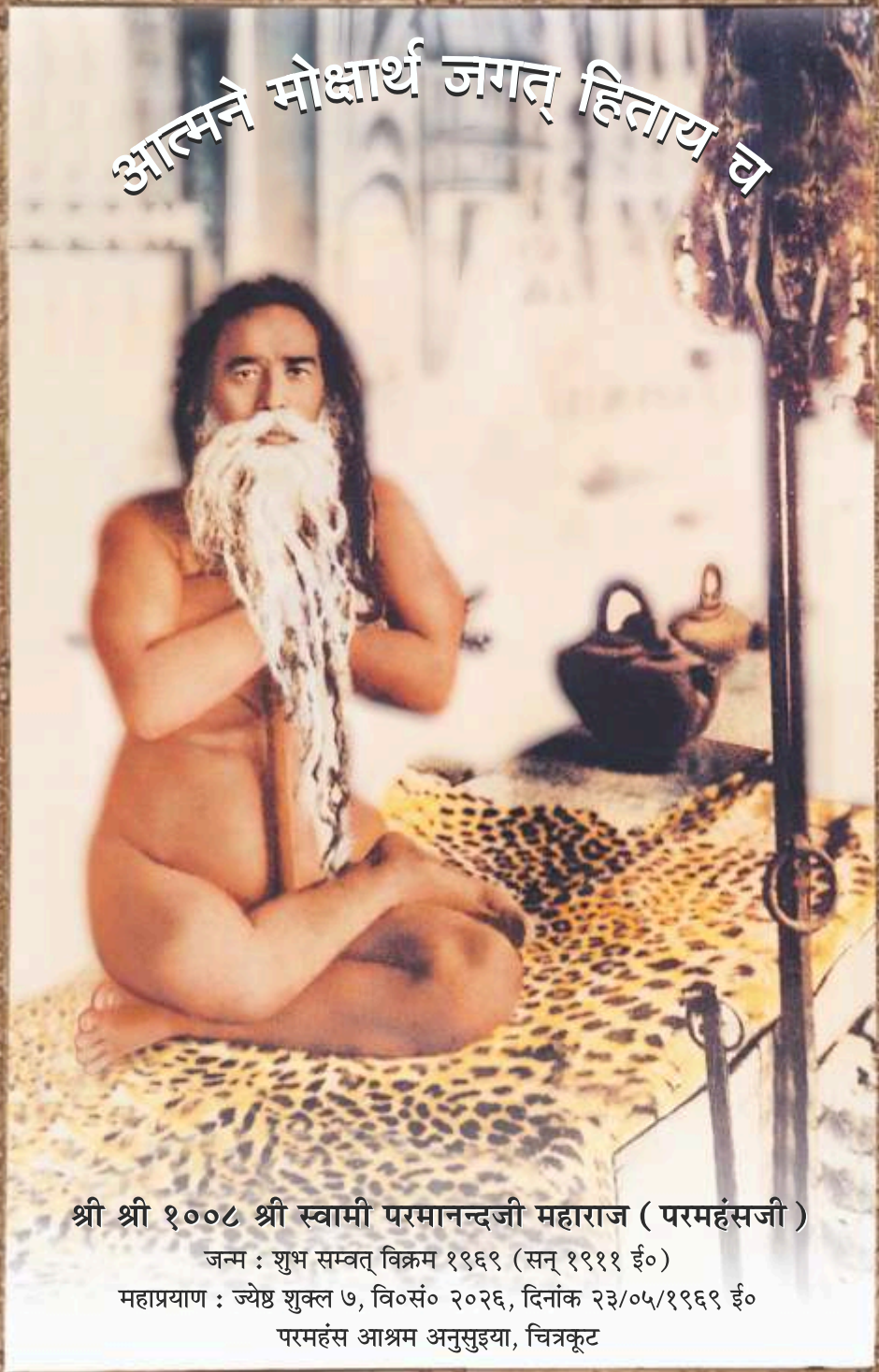

आत्मने मोक्षार्थ जगत् हिताय च

श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

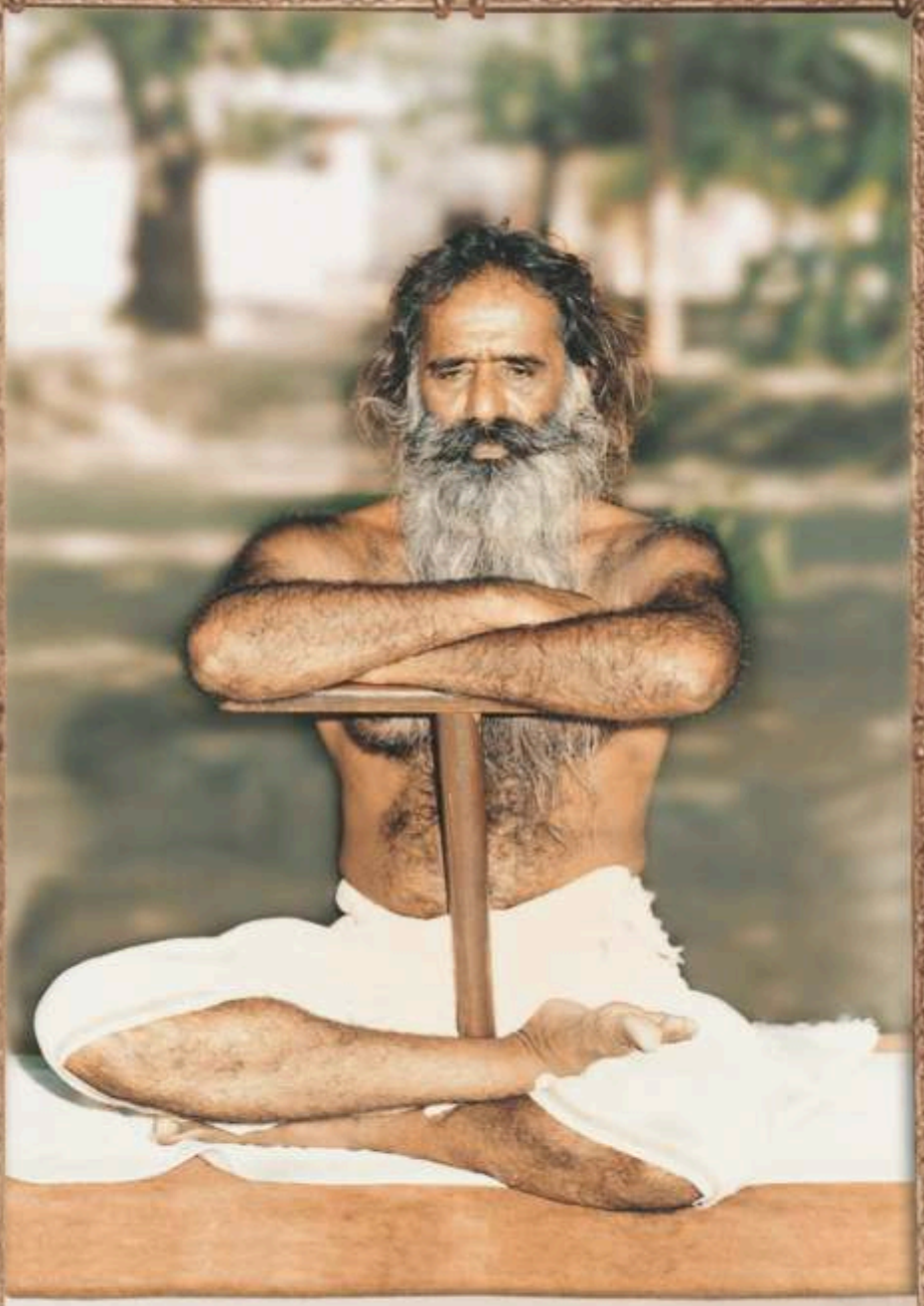

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

⌘ *श्रोत्रादि इन्द्रियों को रूप, रस, शब्दादि विषयों से समेटकर मन को प्रकृति से परे परमतत्त्व परमात्मा की ओर प्रेरित करना प्राणायाम है।*

⌘ *वृत्ति का एकाकार होना ध्यान है।*

– स्वामी अड़गड़ानन्द

धर्म-संदेश

भारत के वैदिक ऋषि-मुनियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम से भी हजारों वर्ष पूर्व अपने कठोर तपश्चर्या में अनवरत प्रयास के फलस्वरूप एक परमात्मा को प्रत्यक्ष किया और पूरे भारत की वनस्थलियों में आश्रम बनाकर शिष्य-परम्परा में हृदयंगम कराते हुए उसे संजोकर रखा। वही सत्य आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भली प्रकार दृढ़ाया। उन्होंने कहा कि एक आत्मा ही सत्य है; अन्य जो कुछ भी है वह नश्वर है, अस्तित्वविहीन है। यह सन्देश उन्होंने मानवमात्र को सम्बोधित कर कहा। विश्व के परवर्ती महापुरुषों ने इसे ज्यों-का-त्यों अपनाया तथा देशज और क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुत किया। अहुरमज्दा, गॉड, अल्लाह इत्यादि विविध नामों से पुकारा, जो एक ही परमात्मा का बोध कराते हैं, अत: वे सब आपके अनुयायी ही हैं। उस एक परमात्मा की प्राप्ति की विधि का आचरण ही धर्म है। धर्म एक है। अत: धर्मनिरपेक्षता के विषय में नारे लगानेवाले, प्रतीत होता है, भ्रमित हैं; क्योंकि एक से अधिक संख्या होने पर ही पक्ष और विपक्ष का प्रश्न उठता है। इस रहस्य को भली प्रकार जानने एवं उचित व्याख्या प्राप्त करने के लिए देखें – **'यथार्थ गीता'**। यह गीता धर्म का समग्र बोध कराती है। यह मानवमात्र का शास्त्र है।

ईश्वर क्या है? कहाँ रहता है? कैसे प्राप्त करें? इसके लिए देखें – **'यथार्थ गीता'**।

निवेदक :

भक्तमण्डल

श्री परमहंस आश्रम

शक्तेषगढ़, चुनार, मीरजापुर (उ०प्र०)

योगशास्त्रीय प्राणायाम ?

(श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़ में दिनांक २०-७-२००३, रविवार को भाविक भक्तों की प्राणायाम-सम्बन्धी कतिपय जिज्ञासाओं पर पूज्य महाराजश्री का निर्णायक सन्देश।)

धर्मानुरागी सज्जनो!

योग का एक अंग है प्राणायाम! आज आपका प्रश्न है प्राणायाम! यह बहुचर्चित शब्द है। विदेशों से लोग प्राणायाम सीखने भारत आते हैं तथा भारतीय महात्माजन प्राणायाम की शिक्षा देने विदेश जाते हैं। जनसाधारण में प्राणायाम कुतूहलपूर्ण श्रद्धा का विषय बना हुआ है। अत: विचारणीय है कि प्राणायाम है क्या?

सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि प्राण क्या है? संस्कृत वाङ्मय में यह शब्द 'अन्' धातु से बना है जिसका अर्थ है साँस लेना। 'अन्' में 'प्र' उपसर्ग जुड़ने से प्राण शब्द बनता है। ऋग्वेद का दशम मण्डल, ९०वाँ सूक्त-जो पुरुषसूक्त के नाम से प्रसिद्ध है, उसकी तेरहवीं ऋचा में है– **'प्राणाद्वायुरजायत'**– परम पुरुष के प्राण से वायु उत्पन्न हुई। प्राण का अर्थ साँस लेना ही नहीं बल्कि वह जीवनीशक्ति है जो साँस लेने और छोड़ने को बाध्य करती है, जो शरीर में वाणी-आँख-कान-नाक-मन तथा विश्व में विभिन्न रूपों में ऊर्जस्वित है। इसलिए सभी जीवधारी प्राणी कहे जाते हैं।

अथर्ववेद में प्राण की महत्ता बतायी गयी है। छान्दोग्य उपनिषद् में प्राण को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में प्राण को बल कहा गया है। प्रश्नोपनिषद् में प्राण और रयि के रूप में सृष्टि का आलंकारिक वर्णन है। इस उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने सुकेशा आदि छ: ऋषियों के छ: प्रश्नों का क्रम से उत्तर दिया है। इनमें से तृतीय प्रश्न कोसलदेशीय आश्वलायन ने पूछा– भगवन्! यह प्राण किससे उत्पन्न होता है? इस शरीर में कैसे आता है? अपने को विभाजित कर किस प्रकार स्थित होता है? किस ढंग से शरीर से बाहर निकलता है? किस प्रकार बाह्य जगत् को धारण करता है और **'कथं**

अध्यात्मम्'– किस प्रकार आत्मा के आधिपत्य में रहकर आत्मदर्शनपर्यन्त दूरी तय करता तथा आत्मा में स्थिति प्राप्त करता है?

महर्षि ने उत्तर दिया कि यह प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है और इस शरीर में '**मनोकृतेन आयाति**'– मन के किये हुए संकल्पों से आता है। यह इस शरीर में प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान–इन पाँच भागों में विभक्त होकर रहता है। यह प्राण गुदा और उपस्थ में नाभि के नीचे अपान को नियुक्त करता है, जिससे मल-मूत्र विसर्जन की क्रियाएँ होती हैं। स्वयं मुख्य प्राण मुख और नासिका द्वारा विचरता नेत्र और श्रोत्र में स्थित रहता है। शरीर के मध्य भाग में समान वायु रहता है। यह इस प्राणाग्नि में हवन किये हुए भोजन को पचाता और उसके रस को शरीर के सभी भागों में समान रूप से पहुँचाता है, जिससे सप्तधातुएँ पुष्ट होती हैं। व्यान वायु हृदय में रहते हुए शरीर की बहत्तर हजार नाड़ियों में विचरण करता और उन्हें व्यवस्थित रखता है। उदान वायु मस्तिष्क में रहता है, ऊपर की ओर विचरता है। यह पुण्य कर्मों द्वारा मनुष्य को पुण्यलोकों में और पाप कर्मों के कारण अधम लोकों में ले जाता है और पाप-पुण्य मिश्रित कर्मवालों को मनुष्य लोक में ले जाता है।

यहाँ पाँचों प्राणों का जो कार्य है– भोजन पचाना, रस को शरीर में पहुँचाना, मल-मूत्र विसर्जन, श्वास लेना इत्यादि क्रियाएँ पशु-पक्षी योनि में भी होती हैं। सब जल-अन्न ग्रहण करते हैं और सबको शक्ति-लाभ होता है। यह नैसर्गिक क्रियाएँ हैं। इनका प्राणायाम से कोई सम्बन्ध नहीं है। मन के संकल्प-विकल्प का नाम प्राण है। इस प्राण को अर्थात् संकल्प-विकल्प को संयमित करना है, प्रकृति से परे परम पुरुष परमात्मा की ओर मनोवृत्ति को प्रेरित करना है। यही प्राणायाम-विधि है। वृत्ति का शान्त ठहरना प्राणायाम है।

महाभारत –

महाभारत, शान्तिपर्व के उपखण्ड मोक्षपर्व में कराल नामक जनक और महर्षि वशिष्ठ का संवाद पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनाते हुए कहा कि योगियों के लिए प्रधान कर्त्तव्य है– ध्यान! वही उनका परम बल है। योगविद् उस ध्यान को दो प्रकार का बताते हैं– एक तो मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम। प्राणायाम के भी दो भेद हैं– सगुण और निर्गुण! इनमें से जिस

प्राणायाम में मन का सम्बन्ध सगुण के साथ रहता है वह सगुण प्राणायाम है और जिसमें मन का सम्बन्ध निर्गुण के साथ रहता है वह निर्गुण प्राणायाम है। 'स' का अर्थ है वह परमात्मा अर्थात् ईश्वर! जब मन के संकल्प का प्रवाह ईश्वरीय गुणों में रहता है तब प्राणायाम सगुण है। जब यही ईश्वरीय गुण सहज प्रवाहित हो गये, तब वह प्रयासशून्य अवस्था निर्गुण प्राणायाम की है।

शौचादि कृत्यों और भोजनादि में जो समय लगता है इसे छोड़कर शेष सभी समय में तत्परतापूर्वक योग का अभ्यास करना चाहिए। बुद्धिमान योगी को चाहिए कि पवित्र हो मन के द्वारा श्रोत्र आदि इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से हटाये। शब्दादिक विषयों से श्रोत्रादिक इन्द्रियों को संयत कर लिया तब मन स्वतन्त्र है, इन्द्रियों के संसर्ग से मुक्त है। उस समय मन को, मनोवृत्ति को चौबीस तत्त्वों वाली सम्पूर्ण प्रकृति से परे परमात्मा की ओर प्रेरित करे। हमने गुरुजनों से सुना है, जो इस प्रकार प्राणायाम करते हैं वे सदा परब्रह्म परमात्मा को जानने के अधिकारी होते हैं। यहाँ पर वृत्ति को प्रकृति से हटाकर परमात्मा की ओर लगाना प्राणायाम है।

श्रीमद्भगवद्गीता –

महाभारत के प्राण और सृष्टि के आदिग्रन्थ गीता में प्राण का निरूपण करते हुए भगवान श्रीकृष्ण अध्याय चार के सत्ताईसवें श्लोक में कहते हैं–

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। (४/२७)

अर्जुन! '**सर्वाणीन्द्रियकर्माणि**'– इन्द्रियाँ कर्म करती हैं, '**प्राणकर्माणि**'– और प्राण भी कर्म करते हैं। इन्द्रियों और प्राणों के कार्यकलाप को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयमरूप योगाग्नि में हवन करते हैं। कुछ अध्ययन कर लेना, मस्तिष्क का बुद्धिस्तर बढ़ा लेना ज्ञान नहीं है। गीता में ज्ञान आत्मा की आवाज का प्रस्फुटित होना है, उसके संरक्षण में और उसी को समझते हुए चलना है।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। (१३/११)

'अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं'– आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना और उनके संरक्षण में चलते हुए परमतत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन और दर्शन से मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है। उनके आदेश का पालन ज्ञान की जागृति है और उन्हीं के संरक्षण में चलते हुए जहाँ से वे प्रसारित करते हैं उस परब्रह्म परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन और दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है। सृष्टि में इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, अज्ञान है। इसी ज्ञान पर बल देते हुए भगवान कहते हैं कि प्राणों के क्रियाकलाप को, समस्त इन्द्रियों के कार्यकलाप को ज्ञान से प्रकाशित अर्थात् भगवान के निर्देशन को समझते और चलते हुए आत्मा में संयमरूपी योगाग्नि में हवन करते हैं। बाहर कार्य करती हैं इन्द्रियाँ और अन्तराल में कार्य करते हैं मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार! इनके कार्यकलाप के प्रवाह का नाम प्राणों का व्यापार है। प्राण में निरन्तर संकल्प-विकल्प का क्रम चलता है। ये अनियमित हैं। सर्वत्र गतिशील हैं। इन्हें एक परमात्मा में संयमित प्रवाहित करना प्राणायाम है। इन्हें प्रवाहित करने का तरीका अगले ही श्लोक में बताते हैं–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।। (४/२९)

बहुत-से योगी लोग अपान वायु में प्राण को हवन करते हैं, बहुत-से प्राण को अपान में हवन करते हैं। इस प्रकार हवन करते हुए प्राण और अपान की गति का निरोध करके प्राणायाम के परायण हो जाते हैं।

'प्राण' अर्थात् जो श्वास आप लेते हैं, 'अपान'–जो श्वास बाहर निकालते हैं अर्थात् श्वास और प्रश्वास का यजन! जब प्राण से सुरत गयी तो अपान पर टिकी, अपान से सुरत उठी तो प्राण पर टिकी। प्राण को अपान में, अपान से प्राण में; बीच में कोई दूसरा उद्वेग न पैदा हो। श्वास आयी तो ओम्, गई तो ओम् – इस प्रकार श्वास-प्रश्वास में लगते हैं। ॐ और प्रणव एक ही हैं। ॐ का ही दूसरा नाम प्रणव है। क्रमशः अभ्यास इतना सूक्ष्म हो गया कि **'प्राणापानगती रुद्ध्वा'–** प्राण और अपान की गति रुक गयी; न भीतर से किसी अन्य संकल्प का अभ्युदय हो और न बाहरी वायुमण्डल के संकल्प अन्दर प्रवेश कर पाते हों तहाँ प्राणायाम की अवस्था आ जाती है। अब प्राणों

के व्यापार पर विराम लग गया, प्राण एक निर्धारित आयाम में प्रवाहित होने लगा – इसका नाम है प्राणायाम।

अन्त:करण में संकल्प की अनन्त लहरे हैं। इन्हीं संकल्पों के ही कारण बहुत कुछ होने पर भी शान्ति नहीं है। कभी-कभी नींद नहीं आती। कुछ संकल्पों से हमारी सुरक्षा होती है जिन्हें दैवी सम्पद् कहते हैं, जो ईश्वरीय अनुभूति का संचार देती है। कुछ संकल्पों को हमें त्यागना है जिन्हें आसुरी सम्पद् कहा गया है, जो इस आत्मा के अधोगति के कारण हैं। इस प्रकार सतत अभ्यास के द्वारा विद्या और अविद्या दोनों के क्रमों का शान्त हो जाना, श्वास तैलधारावत् खड़ी हो जाय– यही प्राणायाम की पराकाष्ठा है। वृत्ति को प्रणव में प्रवाहित करना, परमात्मा के किसी छोटे से नाम ओम् इत्यादि में अथवा योग-विधि में प्रवाहित करना प्राणायाम है। इस निरोध के साथ ही यज्ञ का परिणाम निकल आता है – वह है सनातन ब्रह्म का दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और स्थिति!

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।। (४/३१)

यज्ञ के पूर्तिकाल में (मन के निरोध और विलयकाल में) यज्ञ जो अवशेष छोड़ता है वह है अमृत! मृत्यु से परे अमृत-तत्त्व केवल परमात्मा है। यज्ञकर्त्ता उस सनातन ब्रह्म में प्रवेश पा जाता है। वह परमात्मा ही शाश्वत सत्य है, सनातन है। काल से अत्यन्त अतीत वह परमात्मा परम सत्य है। वह वृहद् है इसलिए ब्रह्म कहा जाता है। यज्ञकर्त्ता उस ज्ञानामृत को, मृत्यु से परे उस अमृत-तत्त्व परमात्मा की जानकारी प्राप्त करता है। उसे जानकर वह ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

प्रश्न खड़ा होता है कि यज्ञ अर्थात् योग-विधि का आचरण अथवा प्राणायाम करने का अधिकार किसे है? भगवान कहते हैं– अर्जुन! यज्ञरहित पुरुष के लिए दुबारा मानव-तन भी सुलभ नहीं है तो परलोक कैसे सुलभ होगा? अर्थात् यज्ञ के अनुष्ठान का अधिकार दो हाथ-पैरवाले मानव-तन को है। पशुओं को नहीं, पक्षियों को नहीं बल्कि दुर्लभ इस मानव-तन को है, चाहे उसका जन्म उत्तरी ध्रुव पर हुआ हो, भारत में हुआ हो, अरब में हुआ हो या

आस्ट्रेलिया में। क्योंकि गीता उस समय की है जब आज के प्रचलित मजहब, जातियाँ, कबीले और साम्प्रदायिक धर्म-संगठन थे ही नहीं। गीता तो पृथ्वी पर कहीं भी जन्मे मानव के अन्त:करण में दु:खों के कारणों का निवारण और उसे सहज सुख, अनन्त जीवन, शाश्वत शान्ति और सदा रहनेवाली समृद्धि की प्राप्ति का साधन-क्रम है।

योगेश्वर श्रीकृष्ण प्राणायाम की विधि पर पुन: प्रकाश डालते हैं–

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।। (५/२७)

'स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यान्'– बाह्य स्पर्शों को (इन्द्रियों और विषयों के संसर्ग को) बाहर ही त्यागकर, भृकुटि के मध्य में दृष्टि को स्थिर कर (सीधी दृष्टि नासाग्र के सामने जहाँ पड़ती हो, वहाँ दृष्टि को स्थिर कर) मन की दृष्टि (सुरत) को वहाँ स्थिर करो। आँखें नहीं देखतीं, देखते हैं आपके विचार, देखती है मन की दृष्टि (सुरत)। उस सुरत को प्रयत्नपूर्वक श्वास में लगायें कि कब श्वास आयी और कब गयी! **'नासाभ्यंतरचारिणौ'–** नासिका में विचरनेवाली वायु को देखें कि श्वास कब अन्दर आयी और क्या कह दिया, कब बाहर गयी और क्या कहा? केवल श्वास को देखते रहें कि क्या कहती है? साधक की श्वास ओम् या प्रणव के अतिरिक्त कुछ कहती ही नहीं। मन को द्रष्टा के रूप में खड़ाकर श्वास में उठनेवाले शब्द पर ध्यान केन्द्रित करें। व्यक्ति केवल वायु ही ग्रहण नहीं करता अपितु उसके साथ बाह्य वायुमण्डल के संकल्प भी ग्रहण कर लेता है। शुभ-अशुभ संकल्पों की तरंगें भी उसे प्रभावित कर देती हैं। इसी प्रकार श्वास बाहर निकालते समय वह केवल कार्बन-डाई-ऑक्साइड ही नहीं निकालता बल्कि अपने शुभ-अशुभ संकल्पों की तरंगें भी उसमें मिला देता है। इसलिए श्वास-प्रश्वास पर दृष्टि रखें कि नाम के अतिरिक्त अन्य कोई विचार उसमें मिलने न पाये।

साधन के आरम्भ में महापुरुषों ने परमात्मा के बोधक नाम के जप पर बल दिया; किन्तु प्राणायाम एक उन्नत स्तर है जिसमें नाम अलग से श्वास में ढालना या कहना नहीं पड़ता बल्कि नाम श्वास में सहज ढला-ढलाया मिल जाता है। इसलिए प्राणायाम में नासिका में विचरनेवाली वायु कब बाहर गयी

और आयी, केवल इस पर दृष्टि रखना है। श्वास को न घटाना है, न बढ़ाना है और न कहीं रोकना है; रोकना है तो केवल इतर संकल्पों को।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।। (५/२८)

वास्तव में मन, बुद्धि और इन्द्रियों को जिसने जीत लिया है, इच्छा, भय और क्रोध से ऊपर उठा हुआ वह मुनि सदा मुक्त ही है। वह मुक्ति में पाता क्या है?–

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।। (५/२९)

यज्ञ, तप, नियम और संयम अंतत: जिसमें विलय होते हैं और बदले में जो प्राप्त होता है वह मैं हूँ। अर्जुन! वह मुझमें निवास करता है, मेरे अविनाशी स्वरूप को प्राप्त होता है– **'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।।' (मानस, २/१२६/३)** इस प्रकार गीता का भी यही निर्णय है कि वृत्ति का श्वास-प्रश्वास के चिन्तन के द्वारा प्रणव में प्रवाहित करना प्राणायाम है।

प्राणायाम कोई अपने बल से कर भी नहीं सकता जब तक कि भगवान न समझायें, न पढ़ायें। गीता में भगवान कहते हैं–

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। (१५/१४)

अर्जुन! मैं सभी प्राणियों के हृदय में वैश्वानर अग्निस्वरूप होकर प्राण और अपान से युक्त चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। जीवधारी तरह-तरह का भोजन करते ही हैं। शेर मांसाहारी है; शाकाहारी हाथी भी बहुत खाता है। लगता है सबके अन्दर बैठकर भगवान ही उसे पचाते होंगे! ऐसी कोई बात नहीं है। शरीर का जिससे निर्वाह होता है उसे आहार कहते हैं; किन्तु जो आपके स्वरूप को तृप्त करता है वह भजन ही भोजन है। **'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्'** *(तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली, द्वितीय अनुवाक्)***–** अपने पिता वरुण के उपदेशानुसार भृगु ऋषि ने अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और वाणी को ब्रह्म की उपलब्धि का द्वार मानकर, 'अन्न ही ब्रह्म है'–ऐसा जानकर तपस्या की। साधक के लिए ब्रह्म ही एक अन्न है।

गीता के अध्याय चार में जिन संयमाग्नि, योगाग्नि इत्यादि चौदह अग्नियों की चर्चा है उन सबका सामूहिक नाम ज्ञानाग्नि है। भगवान हृदय-देश में स्थित होकर, ज्ञानाग्निस्वरूप होकर जानकारी प्रदान करते हुए श्वास-प्रश्वास से संयुक्त चार प्रकार के अन्न को पचाते हैं। बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा– इन चार विधियों से चलकर एक ही नाम परिपक्व होता है, परावाणी की परिपक्व अवस्था में पहुँचता है। यदि भगवान आत्मा से जागृत होकर न बतायें तो हम-आप कैसे समझ पायेंगे कि कब हमारा नाम-जप सही है और कब गलत है? भगवान कहते हैं– मैं ही पचाता हूँ। जितना भजन हो पाता है, भगवान की ही देन है। 'जाके रथ पर केशो। ता कहँ कौन अँदेशो।।' सारांशत: गीता के अनुसार हमारे प्राण असंतुलित हैं, अनियमित हैं, असंयमित हैं। इनको नियमित एक प्रणव में प्रवाहित करना प्राणायाम है।

पातंजल योगदर्शन –

योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ अंगों में चौथा है प्राणायाम! जब हम उस एक आत्मतत्त्व के चिन्तन में लगते हैं तब इसकी राह में आनेवाला चौथा पड़ाव प्राणायाम है। सांसारिक व्यवहार में इस प्राणायाम का प्रयोग है ही नहीं। आत्मदर्शन की प्रक्रिया में भी यम, नियम और आसन सध जाने के बाद ही प्राणायाम का क्रम आता है। इसलिए जो लोग आरम्भ में ही प्राणायाम का प्रयास करते हैं अथवा उसका शारीरिक एवं भौतिक उपयोग चाहते हैं, भ्रम में हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – पाँच यम हैं। आत्मा को अधोगति में ले जानेवाले विकारों का आचरण हिंसा है। आत्मा के उद्धार की प्रक्रिया अहिंसा है; क्योंकि शरीर एक वस्त्र है। सत्य पर साधक को आरूढ़ रहना है। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहना है। संग्रह का त्याग भी अपरिहार्य है। संग्रह करें तो हृदय में एक भगवान का ही संग्रह करें। इन सबके अभ्यास से शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, तप और ईश्वर-प्रणिधान के नियमों का पालन होने लगता है। इन नियमों के पालन से आसन की क्षमता आती है।

स्थिर सुखमासनम्। (१/४६)

साधनपाद के छियालीसवें सूत्र में महर्षि पतंजलि कहते हैं कि स्थिर और सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। बहुत-से व्यापारी प्रातः गद्दी पर बैठते हैं तो शाम को ही उठते हैं। ऐसा करने में उन्हें सुख है। तब तो हो गयी उनकी आसन-सिद्धि! किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं है। सुख का उतार-चढ़ाव मन पर है, तन पर कभी नहीं! धन-धान्य, सुख-समृद्धि की प्रचुरता होते हुए भी चक्रवर्ती सम्राट दशरथ की आँखों में आँसू थे, नींद नहीं थी। माता कौशल्या के अंतिम दिन रोते व्यतीत हुए। सब कुछ होते हुए भी कभी-कभी मन को ऐसी ठेस लगती है कि मनुष्य एकान्त में बैठ जाता है, कई-कई दिन बाहर नहीं निकलता। आसन तो इतना दृढ़, किन्तु सुख कहाँ!

आसन की सहजता का उपाय बताते हुए महर्षि निर्देश देते हैं–

प्रयत्नशैथिल्यान्तसमापत्तिभ्याम्। (२/४७)

यम और नियम में जो प्रयत्न किया गया, उस प्रयत्न में शिथिलता आ जाय, ये सहज होने लगें और अनन्त अर्थात् परमात्मा में मन लगाने से आसन सिद्ध होता है। यदि केवल शरीर के बैठने का नाम आसन होता तो परमात्मा में मन लगाने की क्या आवश्यकता थी? अंगों के व्यायाम या शरीर की मुद्राओं का आसन से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। संसार में अष्टावक्र जैसे महापुरुष भी हुए हैं जिनके अंग आठ जगह से टेढ़े-मेढ़े थे। उनके हाथ-पाँव सीधे हो ही नहीं सकते थे, कौन-सा आसन करते? किन्तु वे अपने युग के सर्वोपरि महापुरुष, योगेश्वर और तत्त्वदर्शी हुए। हमारे गुरुदेव के गुरु महाराज का एक पाँव टूटा हुआ था, मुड़ ही नहीं सकता था; किन्तु उन्हीं के लिए गुरुदेव को आकाशवाणी हुई कि 'इस मन्दिर में तुम्हारे गुरु महाराज बैठे हुए हैं।' रात के अँधेरे में भी गुरु महाराज वहाँ मिल गये। वह वास्तव में महापुरुष थे। दूसरों में योग-साधना जागृत कर देने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। वह तत्त्वदर्शी महापुरुष परकाया प्रवेश की कला में पारंगत थे, किन्तु शारीरिक अभ्यास जैसा आसन उन्होंने कभी नहीं किया। वस्तुतः अनन्त परमात्मा में मन लगाने से तथा यम-नियम के अभ्यासजन्य शिथिलता, सहज एकाग्रता से आसन सध जाता है। मन स्थिर और सुखपूर्वक बैठने में सक्षम हो जाता है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। (२/४९)

आसन के सधते ही श्वास–प्रश्वास की गति का स्थिर हो जाना प्राणायाम है। श्वास हम-आप लेते हैं, प्रश्वास त्यागते हैं। हम लेते हैं दैवी सम्पद्– यम-नियम इत्यादि; और त्यागते हैं राग-द्वेष, काम-क्रोध इत्यादि विकार। इन दोनों का क्रम जब शान्त हो जाय, भीतर से न किसी प्रकार के संकल्पों का उदय हो और न बाह्य वायुमण्डल के भले-बुरे संकल्प अन्दर प्रवेश कर पाते हों– इस प्रकार श्वास और प्रश्वास दोनों की गति में उठनेवाले उद्वेगों का शान्त होना प्राणायाम है।

प्राणायाम किया नहीं जाता, हो जाता है। अभ्यास किया जाता है यम और नियम का, अवस्था आती है आसन की और आसन के सधते ही श्वास और प्रश्वास की गति का स्थिर हो जाना – न भीतर से संकल्पों का स्फुरण हो, न बाह्य वायुमण्डल के भले-बुरे चिन्तन अन्दर प्रवेश कर पायें – प्राणायाम की अवस्था है। अब प्राणों के व्यापार पर विराम लग गया। प्राणों की क्रिया एक आयाम में प्रवाहित होने लगी। यही हमारा लक्ष्य भी है कि चित्तवृत्ति को रोकें।

प्राणायाम हमारा अभीष्ट है। इस स्थिति को प्राप्त करना है। इसलिए प्राणायाम की विधि बताते हुए महर्षि कहते हैं–

बाह्याभ्यंतरस्तम्भवृत्तिः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।
(२/५०)

श्वास और प्रश्वास का निरीक्षण करते समय देखें कि मन कितनी देर के लिए कहाँ-कहाँ गया? बाह्य वृत्ति वह है जो बाहर विकारों में ले जाय, प्रकृति की ओर ले जाय; मोहमयी अनन्त प्रवृत्तियों की ओर, अंधकार की ओर ले जाय। अभ्यंतर वृत्ति विवेक, वैराग्य, शम, दम, धारणा, ध्यान और समाधि का विश्लेषण करती है और स्तम्भवृत्ति स्थिर वृत्ति है जो नाम या रूप के तद्रूप रहती है। इसे देशकाल और संख्या द्वारा देखने पर यह दीर्घ सूक्ष्म होती जाती है। देखते रहें कि मन बाह्य वृत्ति काम, क्रोध, राग, द्वेष, अनन्त इच्छाओं और वासनाओं में कहाँ गया? किस देश में गया? राग में गया तो राग उसका देश हो गया। काल अर्थात् कितने समय तक वहाँ रुका?

'संख्याभिःपरिदृष्टो'–संख्या के द्वारा देखें अर्थात् गणना करें कि कितने समय तक रुका? मन को वहाँ से बलात् हटाकर अभ्यास में लगें, स्तम्भवृत्ति में लगायें, नाम या रूप में लगायें, स्थिर करें। अभ्यंतर वृत्ति में मन है तो देखें कि वृत्ति विवेक, वैराग्य इत्यादि में से किसका चिन्तन कर रही है। यदि वृत्ति वैराग्य में है तो वैराग्य इसका देश हो गया। उसमें यह मन कितने काल तक रुका?–इसे संख्या द्वारा मापें और पुनः स्तम्भवृत्ति में लगायें। इस प्रकार इतर संकल्पों पर विराम लग जाता है, संकल्प एक दिशा में प्रवाहित होने से प्राणायाम सुगम हो जाता है, दीर्घ और सूक्ष्म होता जाता है।

प्राणायाम की पराकाष्ठा पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं–

बाह्याभ्यंतर विषयाक्षेपी चतुर्थः। (२/५१)

बाह्य और अभ्यंतर वृत्ति के विषय जब शान्त हो जाते हैं, तब प्राणायाम का चौथा स्तर आता है। संसार में पूरक, कुम्भक और रेचक नाम से प्रचलित त्रिस्तरीय प्राणायाम में इस चौथे स्तर की चर्चा नहीं होती। जब वृत्तियों को नियन्त्रित करने के लिए अभ्यास न करना पड़े और वे सहज प्रवाहित होने लगे, वृत्ति बाधक न हो और शान्त प्रवाहित रहे–यह प्राणायाम का चौथा स्तर है। विषय जब शान्त हो जाय– यह प्राणायाम की परिपक्व अवस्था है।

इस प्रकार प्राणायाम में वृत्तियों को शान्त करना है, संकल्पों पर विराम लगाना है, एक निर्धारित दिशा में मन को प्रवाहित करना है न कि श्वास को तोड़ना-मरोड़ना है। श्वास बच्चों में बच्चों-जैसी, वृद्धों में वृद्ध-जैसी, युवक में युवक-जैसी, रोगी में रोगी-जैसी आती-जाती है। सहज श्वास स्थूल शरीर की जीवनचर्या है। क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से यह शरीर निर्मित है। कहा जाता है शरीर पानी का बुलबुला है। वैज्ञानिकों ने अभी शोध किया है कि मानव-शरीर में चौरानबे प्रतिशत तरल पदार्थ और छः प्रतिशत ही ठोस है। पानी का बुलबुला नहीं तो और क्या है? शरीर में पृथ्वीतत्त्व है, जलतत्त्व है, आकाश और अग्नितत्त्व है और वायुतत्त्व श्वास-प्रश्वास द्वारा शरीर का जीवन है। इसे घटा-बढ़ाकर जीवन की प्रकृतिप्रदत्त प्रणाली में बाधक न बनें। बाधा पहुँचाने से भी प्राणायाम की आशा नहीं है क्योंकि प्राणायाम में वृत्तियों का निरोध करना है, वृत्तियों में उठनेवाले बाह्य और अभ्यन्तर विषयों को

शान्त करना है। श्वास के साथ उठनेवाले संकल्पों का निरोध करना है, न कि श्वास-प्रश्वास का। प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास में उभरनेवाले विषयों का निरोध करना है न कि श्वास की खींचतान करनी है। श्वास की सहज प्रणाली में बहुत खींचतान करने से कोई न कोई रोग अवश्य घेर लेगा। प्राणों के व्यापार को नाम (प्रणव) में ध्यान (सद्गुरु के स्वरूप) में या ब्रह्मविद्या में लगाना है। जिसमें सम्पूर्ण योग-विधि आ जाती है। इन तीन के अतिरिक्त मन को ले जाने की चौथी जगह ही नहीं है। प्राण के व्यापार को स्थिर करके आत्मस्वरूप में प्रवाहित करना प्राणायाम है।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। (२/५२)

प्राणायाम के सधते ही प्रकाश अर्थात् ज्योतिर्मय परमात्मा और आपके बीच संस्कारों का जो आवरण पड़ा हुआ है वह क्षीण हो जाता है। प्राणायाम से एक और लाभ है–

धारणासु च योग्यता मनसः। (२/५३)

मन में धारण करने की क्षमता आ जाती है। प्राय: लोग प्राणायाम का प्रयोग शारीरिक व्याधियों को दूर करने के लिए करते हैं; किन्तु योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि का स्पष्ट मत है कि प्राणायाम से ईश्वरीय साक्षात्कार में सुगमता और मन में धारण करने की क्षमता का विकास होता है। आरम्भिक अवस्था में मन में न तो रुकने की क्षमता होती है न धारण करने की। आप नाम जपते हैं, थोड़ी ही देर में मन न जाने कहाँ भाग जाता है! आप स्वरूप देखते हैं, कुछ ही देर में मन अन्य कुछ चिन्तन करने लग जाता है। वह नाम या रूप धारण नहीं कर पाता। किन्तु जब बाह्य और अभ्यंतर वृत्तियाँ शान्त होकर एकमात्र प्रणव में प्रवाहित होने लगती हैं, जब विक्षोभ पैदा नहीं होता, उस समय मन में धारणा की क्षमता आ जाती है। प्राणायाम की अवस्था के पश्चात् मन को आप नाम में टिकाना चाहें तो नाम में, रूप में टिकाना चाहें तो रूप में सुरत टिकी रह जायेगी। दर्पण में जिस तरह अपना चेहरा दिखायी देता है, रूप वैसा ही स्पष्ट बना रहेगा।

स्पष्ट है कि प्राणायाम के सन्दर्भ में जो निर्णय गीता का है, वही महर्षि पतंजलि का है। इसके लिए साँस को न घटाएँ, न बढ़ायें। शान्त बैठ जायँ।

श्वास कब अन्दर गयी, कितनी रुकी, कब बाहर आई, बाहर कितना रुकी?– इसे जानें। जब मन देखने लगे, जानने लगे तो धीरे से चिन्तन में नाम ढाल दें। श्वास आई तो ओम्.... कुछ दिन ढालना पड़ेगा। तत्पश्चात् चिन्तन का एक स्तर है – पश्यन्ती वाणी का जप! उसके जागृत होते ही नाम श्वास में ढला-ढलाया मिलेगा। नाम जागृत हो जायेगा।

श्वास नाम के सिवाय और कुछ कहती ही नहीं। केवल मन को द्रष्टा के रूप में खड़ा कर दें। यह देखते रहें कि श्वास कब आई, कितना रुकी और कब गयी? जहाँ वह श्वासवाला नाम जागृत हुआ, एक बार सुरत लगा दें तो 'रिनक धिनक धुनि अपने से उठे।'– जप सहज लय में प्रवाहित होने लगेगा।

भगवान बुद्ध –

प्राय: लोग कहते हैं कि भगवान बुद्ध ने 'प्राणापानसति' के रूप में या विपश्यना के रूप में कोई नयी शिक्षा दी; किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं है। श्वास-प्रश्वास के सम्बन्ध में भगवान बुद्ध ने भी वही कहा जो आदिग्रन्थ गीता कहती है, महर्षि पतंजलि कहते हैं या प्राप्तिवाले प्रत्येक महापुरुष कहते हैं। गौतम बुद्ध के पिता जब बीमार पड़े तो उन्होंने तथागत के दर्शन का अनुरोध किया। भगवान बुद्ध वहाँ गये और कहा– ''राजन्! आप प्रणव का जप करें। श्वसन-क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करें। हम भी श्वसन-क्रिया का ध्यान करते हैं। आप शोक न करें। पानापान पर मन केन्द्रित करें।''

सूफी सन्त –

सूफी सन्तों की वाणी में तथा कुरआन में आया है कि नफ़्श संयमित करो अर्थात् इन्द्रिय-संयम करो। उस मालिक के नाम के बिना एक भी श्वास खाली गयी तो श्वास मुर्दा है अर्थात् वह आपकी मृत्यु है।

इस प्रकार जिन-जिन महापुरुषों ने इस साधन-मार्ग पर कदम रखा, क्रियात्मक चले, उन सबकी वाणी-भाषा-आशय-निर्णय सब एक रहा है। उनका स्थान जब अपरिपक्व साधक ले लेते हैं तो समाज में दरार स्वाभाविक है।

श्रीरामचरितमानस –

रामचरितमानस में प्राणायाम का एक रूपक गोस्वामी तुलसीदासजी ने अंकित किया है। हनुमान सीता की शोध से वापस आये तो भगवान राम ने पूछा– हनुमान! तुमने सीता को देखा? क्या वह जीवित है? वह अपने प्राणों की रक्षा कैसे करती है? **'कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।'** हनुमान ने उत्तर दिया– **'नाम पाहरू दिवस निसि'**– प्रभो! आपके नाम का तो अहर्निश पहरा लगा हुआ है; **'ध्यान तुम्हार कपाट'**– आपके चरणों के ध्यान का कपाट लगा है। **'लोचन निज पद जंत्रित जाहि प्रान केहिं बाट।।'**–एक तो यह आँख देखती है और दूसरा विचार, मन की दृष्टि देखती है जिसे सुरत कहते हैं। सुरत अपने लक्ष्य आराध्य पर टिकी हुई है। वहीं ताला लगा है। वहाँ से हटे तो दूसरा विचार आये। अब आप ही बतायें कि माँ सीता के प्राण जायँ तो किस राह से? यही तो है प्राणायाम।

भगवान बुद्ध कहते हैं– भिक्षुओ! जब तक जागो, योगाचार में रहो। शयन करो तब भी स्मृति के साथ शयन करो, जिससे निद्रा में भी कोई अनर्थ न होने पाये, अन्य चिन्तन या विकार न आने पाये। कदाचित् स्वप्न दिखायी पड़े तो भगवान की साधना की गतिविधियों का विस्तार दिखायी पड़े। वृत्ति (संकल्प) एक आयाम में, योगाचार में प्रवाहित रहे।

स्वामी परमानन्दजी –

पूज्य महाराजजी कहते थे– **'जागत में सुमिरन करे, सोवत में लव लाय। सुरत डोर लागी रहे, तार टूटि ना जाय।।'** जब तक जागो, सुमिरन करो। शयन करना है तब भी चिन्तन में लव लगाकर निद्रालाभ करो। सोकर उठने पर सुरत वहीं लगी मिले। इस प्रकार आठों पहर अहर्निश सुरत की डोर लगी रहे, चिन्तन का तार टूटने न पाये। वृत्ति प्रकृति से परे आत्मा में जुड़ी रहे।

गुरुदेव की शरण में आने से पूर्व एक सज्जन ने मुझे बताया था कि उनके चाचा एक घण्टे तक श्वास रोक सकते हैं। हमने उनसे पूछा, "आप

कितनी देर तक श्वास रोक पाते हैं?'' उन्होंने बताया, ''पन्द्रह मिनट!'' हमने कुतूहलवश पूछा, ''इसका अभ्यास आपने कैसे किया?'' उन्होंने बताया, ''जितनी देर में श्वास खींचो उतनी ही देर रोको और उतनी ही देर में बाहर निकालो। श्वास खींचते समय **'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं'** श्वास के साथ जपो। श्वास रोकते समय **'भर्गो देवस्य धीमहि'** का जप करो और श्वास छोड़ते समय **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** की भावना करो। इस प्रकार तीन खण्डों में उक्त गायत्री-मंत्र का जप करना चाहिए। श्वास खींचते समय ब्रह्मा का ध्यान, रोकते समय विष्णु का ध्यान और छोड़ते समय शंकर का ध्यान करें।'' हमने ब्रह्मा को देखा ही नहीं था तो ध्यान किसका करते? इसलिए उनकी शिक्षा का क्रियात्मक अनुशीलन नहीं हो सका।

गुरुदेव के सान्निध्य में आने पर उनके एक गृहस्थ भक्त से परिचय हुआ, जो योग के नाम पर कुछ क्रियाएँ करते थे। उन्होंने बताया कि प्राणायाम में बहुत-सी क्रियाएँ की जाती हैं; जैसे– श्वास को बायें नथुने से लें, भीतर रोकें और दाहिने नथुने से निकालें। इसी प्रकार दाहिनी ओर से श्वास लेकर बायीं नासिका से निकालें। तत्पश्चात् दाँत पर दाँत दबाकर होंठ खोलकर सर्र-सर्र श्वास खींचे, निकालें। लुहार की भाथी की तरह पेट फुलायें, पिचकायें। कभी होंठ को गोलकर जिह्वा किञ्चित् बाहर निकालकर जिह्वा के सहारे मुँह से ठण्डी-ठण्डी हवा खींचे – यह शीतली प्राणायाम है। नाक से भौंरे की तरह गुनगुनाते हुए श्वास छोड़ना भ्रामरी प्राणायाम है। उसी प्रकार सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका, मूर्च्छा, केवली, प्लाविनी, काकी, भुजंगी और कवि प्राणायाम के अनेकों भेद हैं। इसी प्राणायाम में कोई मूलबन्ध लगाता है, कोई जालन्धर बन्ध तो कोई उड्डीयान बन्ध! कोई प्राणायाम के साथ षण्मुखी मुद्रा धारण करता है तो कोई खेचरी मुद्रा! किन्तु गुरु महाराज ने इनमें से कभी कुछ भी नहीं बताया, इनका नाम तक नहीं लिया; क्योंकि प्राणायाम में वृत्ति में उभरनेवाले विषयों का निरोध होता है। स्थूल श्वास को रोकना हमारा लक्ष्य नहीं है।

प्रायः लोग कहते हैं कि श्वसन-क्रिया के व्यायाम द्वारा कुछ समय के लिए मनोविकारों से बचा जा सकता है। वह तो किसी भी शारीरिक व्यायाम या सात्त्विक क्रियाओं से भी संभव है। समाज में आसन के नाम पर प्रचलित

विभिन्न शारीरिक मुद्राओं और प्राणायाम के नाम से प्रचलित श्वास को रोकने का चिकित्सकीय उपयोग हो सकता है; यह ठीक भी है किन्तु कभी रोगी होंगे तब! अत: इलाज के लिए पहले से ही आसन सीखना या कुम्भक साधना क्या उचित है? पाँव में चोट लगी ही नहीं और पट्टी बाँधने का अभ्यास करने जैसा असामयिक उपाय लगता है। आज विज्ञान की प्रगति और चिकित्सकीय सुविधाओं की सुलभता के आलोक में हठयोग द्वारा शरीर-शोधन की क्रियाओं का बहुत महत्त्व नहीं रह गया है। इन रहस्यात्मक क्रियाओं की ही देन है कि योग, आसन और प्राणायाम जैसे शब्द कुतूहल की वस्तु बनकर अपना मूल आशय खो चुके हैं, योग-साधना में संशय का सृजन कर रहे हैं और इस पवित्र समाज को विकृत कर रहे हैं। लगता है **'श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः'** (श्वास-प्रश्वास की गति का रुक जाना)– इसी वाक्यांश ने भाविक श्रद्धालुओं को भटका दिया। यहाँ श्वास-प्रश्वास का स्थिर होना बाह्य वृत्ति और अभ्यंतर वृत्ति का स्थिर होना है न कि श्वास को स्थिर करना है। यह श्वास-प्रश्वास, प्राणापान, बाह्य वृत्ति–अभ्यंतर वृत्ति, बाह्य विषय–आन्तरिक विषय – सभी एक ही धारा के संबोधन हैं। परमात्मा का वाचक है प्रणव! इसी का दूसरा नाम है ओम्! आप ओम् का जप करें। शनैः-शनैः बाह्यान्तर वृत्ति शान्त होती जायेगी, चिन्तन स्थिर होता जायेगा, संकल्पों पर विराम लगता जायेगा और आप प्राणायाम की स्थिति में आ जायेंगे।

इस सन्दर्भ में पूज्य महाराजजी एक दृष्टान्त दिया करते थे। एक उद्योगपति थे। उनका नियम था– सायंकाल जब बाजार बन्द होने का समय होता, जिन विक्रेताओं का माल नहीं बिक पाता था, उनका वह सब माल आधे-पौने मूल्य पर खरीद लेते थे। एक दिन एक व्यक्ति अपना कोई सामान लिए बैठा था। उद्योगपति ने पूछा, ''क्या बेच रहे हो?'' उसने कहा, ''पूछा तो सबने; किन्तु खरीदा किसी ने नहीं।'' व्यापारी ने कहा, ''कीमत बताओ और सामान दिखाओ।'' उसने बताया, ''कीमत पाँच सौ रुपये और सामान है बोतल में बन्द भूत! इसे निकलते ही कुछ काम बताते रहना होगा अन्यथा यह आपको ही खा जायेगा।'' उद्योगपति ने एक क्षण विचार किया कि मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, जर्मनी, जापान, आस्ट्रेलिया से अमेरिका तक हमारी इतनी फैक्टरियाँ हैं। व्यवसाय का विस्तार होता जा रहा है। यह तो अच्छा काम

करनेवाला मिला। मेरे पास काम की कमी कहाँ! उसने तुरन्त एक हजार फेंका कि यह सौदा कोई दूसरा न ले ले!

घर पहुँचते ही व्यापारी ने बोतल खोला। भूत ने कहा, ''सेवा बतायें।'' व्यापारी ने देश-विदेश के अधूरे कार्य गिनाये। उसका सारा कार्य एक-दो दिन में समाप्त हो गया। वह चिन्ता में पड़ गया कि अब इसे कौन-सा कार्य बताऊँ? कार्य न बता पाने पर कहीं वह खा न ले!

व्याकुल होकर व्यापारी जंगल की ओर भागा। वहाँ एक सन्त का आश्रम था। उसने सविनय निवेदन किया, ''महाराज! एक भूत क्या खरीदा, आफत मोल ले ली! वह आप ले लें! ऊपर से दक्षिणा भी ले लें।'' सन्त ने पूछा, ''कहाँ है भूत?'' व्यापारी ने कहा, ''बस, आता ही होगा!''

आते ही भूत बोला, ''सेवा बतायें।'' व्यापारी ने कहा, ''अब तो मैंने तुम्हें इन महात्मा को सौंप दिया है। आज से यही तुम्हें काम बतायेंगे।'' भूत ने कहा, ''तो महात्मा ही बतायें अन्यथा महात्मा और आप दोनों को ही खा जाऊँगा।'' महात्मा ने कहा, ''एक बड़ा-सा बाँस ले आ।'' वह ले आया। सन्त ने कहा, ''इसे जमीन में गाड़।'' भूत ने वैसा ही किया। महात्मा ने कहा, ''अब इसी पर चढ़-उतर।'' कभी आश्रम में कार्य होता तो महात्माजी उससे कहते, झाड़ू लगा। लकड़ी ला। चल, यह माला उधर रख। अब कहना न पड़े। अपनी सेवा करते जाओ और खाली समय में इसी बाँस पर चढ़ते-उतरते रहो। ऊपर नीचे आते-जाते वह भूत शिथिल पड़ा, शान्त हुआ, गिरा और मर गया।

इस कथानक का रूपक समझाते हुए महाराजजी कहते थे, ''हो, मन ही भूत है। श्वास ही बाँस है। महापुरुष श्वास का भजन जागृत कर देते हैं। पहले मन चंचल रहता है। संसार में जहाँ–जहाँ यह मन भटक रहा है, इसे उन-उन विषयों से समेटकर श्वास के जप में लगाओ। श्वास से नाम जपो। श्वास आई तो ओम्, गई तो ओम्! अन्य संकल्प आने न पायें। जब आवश्यकता हो सेवा भी कर लो; अन्यथा श्वास में लगे रहो। इस श्वासरूपी बाँस पर चढ़-उतर। इस श्वास से सुमिरन करते-करते मन शिथिल पड़ेगा, शान्त होगा और मिट जायेगा। यह था महाराजजी के उपदेशों में क्रियात्मक प्राणायाम, जबकि वे प्राणायाम का नाम भी नहीं लेते थे।

दैनिक उपदेशों में भी पूज्य महाराजजी क्रिया प्राणायाम की ही बताते थे यद्यपि इसका नाम लेकर कभी इसे महत्त्व नहीं दिया। अनुसुइया आश्रम में गुरुपूर्णिमा व्यतीत हो जाने पर भी बहुत-से श्रद्धालु घर लौटने का नाम ही नहीं लेते थे। महाराजजी उन्हें सान्त्वना देते थे– ''देखो, जाना तो पड़ेगा ही! बिना गये घर के कार्य भी नहीं होंगे। जाओ, शरीर से कहीं भी रहो, मन से आया-जाया करो।'' इतना आश्वासन पाकर कुछ भक्त घर लौट जाते, फिर भी दो-चार भाविक रुके ही रहते थे।

दो-एक दिनों के अन्तराल से जब महाराजजी भी देखते कि उन्हें उच्चाटन हो रहा है, घर की याद आ रही है तब उनसे कहते, ''मन तो बच्चों में है, धन्धे में है तो यहाँ रहने से लाभ ही क्या है? जाओ, घर जाओ! कहीं भी रहो, नाम जपा करो। ॐ, राम – दो-ढाई अक्षर का कोई एक छोटा-सा नाम चुन लो; क्योंकि इस नाम को आगे चलकर श्वास से जपना होगा। उस समय **'ॐ भूर्भुवः स्वः'**, **'ॐ नमः शिवाय'**, **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**– जैसी लम्बी प्रार्थनाएँ श्वास में नहीं ढलेंगी। 'मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरिहर सुर सर्व।' इसलिए जपवाला नाम बहुत छोटा-सा होना चाहिए, जैसे– ॐ या राम! किसी एक नाम का जप करो और सुबह-शाम हमारे स्वरूप का केवल पाँच मिनट ध्यान धर लिया कर! जिस दिन तुम केवल दो मिनट भी हमारा स्वरूप पकड़ ले जाओगे, बेटा! घर बैठे-बैठे तुम भजन पा जाओगे और मैं यहाँ बैठे-बैठे तुम्हें भजन दे दूँगा। भजन एक जागृति है। वह न लिखने में आता है, न कहने में! वह तो किसी अनुभवी सद्गुरु के द्वारा जागृत हो जाया करता है–'सो बिनु सन्त न काहू पायी।'

इस प्रकार श्वास के चिन्तन द्वारा महाराजजी प्राण को ओम् में प्रवाहित करने का निर्देश देते थे। अभ्यास प्राणायाम का नहीं, श्वास से ओम् जपने का करना है। रोकना श्वास को नहीं बल्कि श्वास में उठनेवाले विषयों को रोकना है। संकल्पों के रुकने के पश्चात् की स्थिति है प्राणायाम! प्राणायाम एक प्रमाण-पत्र है। अभ्यास यम-नियम का करना है। परिणाम में आता है प्राणायाम! वह भी भजन की अन्तिम अवस्था नहीं है, बीच का एक पड़ाव मात्र है।

।। ॐ श्रीगुरुदेव भगवान की जय ।।

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

5, New Apollo Estate, Mogra Lane, Opp. Nagardas Road,
Andheri (East), Mumbai – 400069 India
Telephone : (022) 2825300
वेबसाईट : www.yatharthgeeta.com ● ईमेल : contact@yatharthgeeta.com